समर्पण

विश्व बन्धुत्व और विश्व प्रेम की स्थापना के
स्वप्न को साकार देखने वाले तरुण
समाज को, जो अपने अदम्य
उत्साह से अपने इस लक्ष्य
की ओर बढ़ रहे हैं।

कानपुर
स्वतन्त्रता दिवस
१५ । ८ । ५१

लेखक

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने नवीन मानव समाज की जो कल्पना की है उसी का नाम "सर्वोदय समाज" है। "सर्वोदय समाज" अपने शब्द के अनुरूप अर्थ के अनुसार ऐसा समाज होगा जिसमें मनुष्य पुर्णत्व के समीप पहुँच सकेगा। शोषण हीन मानव समाज की कल्पना मानव जाति के लिए नवीन वस्तु नहीं है, फिर भी राष्ट्र पिता महात्मा गांधी के "सर्वोदय समाज" में वे सब बातें जुड़ गयी हैं जिनका अनुभव हमें इतिहास के अध्ययन से मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक में राष्ट्र पिता महात्मा गांधीके विचारोंके आधार पर "सर्वोदय समाज" की सरल व्याख्या करने का प्रयत्न मात्र किया जा रहा है।

हमें आशा है कि साधारण पाठक इस पुस्तक के द्वारा "सर्वोदय समाज" की रूप रेखा समझने में साहायता पा सकेंगे यों तो कई अधिकारी व्यक्तियों ने महात्मा गांधी के दृष्टिकोण के आधार पर पुस्तकें लिखी हैं फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि गांधीवाद के सम्यक स्वरूप को समझने के लिए एक पृष्ठ भूमि की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन हुआ है।

स्वतंत्रता दिवस
१५।८।४६

प्रकाशक

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

: लिये आवश्यक उपभोग की वस्तुओं की पूर्ति के लिये प्रति नुष्य यदि एक घन्टा भी काम कर दे तो वह उसे पूरा कर रता है। सभी ओर से मानव के मौलिक अधिकारों और सके उत्तम संस्कारों की सुरक्षा की दुहाई दी जाती है। जसा के प्रसेलम में होने वाले समाजवादियों की सभा में बेलजियम : प्रधान मंत्री ने कहा कि आज के संकट की सबसे गम्भीर ात यह है कि लोग एक भाषा का प्रयोग करके भी उसका भिन्न अभिप्राय समझते हैं।

डा० गिल्मन के साथ ही बार्डेव और मार्टेन का आधुनिक संकट का विश्लेषण का आधार भी धार्मिक है। यह लोग भी कहते हैं कि आज के सामाजिक संकट का मूल इस बात में है कि मानव धार्मिक भावना से विरत होता जाता है। संसार में मानव लौकिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से पाप की ओर अग्रसर होता है। इसलिये धर्म भावना ही इसे अधःपतन से बचने के लिये आवश्यक है। आज मनुष्य भौतिकवाद, विज्ञान और युद्ध से धर्म, भावना से ओत प्रोत आदर्श पथ से पथ भ्रष्ट होता जा रहा है।

रूढ़िवादी मार्क्सवादी एवं लेनिनवादियों की ओर से यह तर्क दिया जाता है कि आज पूंजीवादी पद्धति विनाश का मार्ग अपना चुकी है। आज वह अपनी सफलताओं और निर्माणों का विध्वंस करने पर तत्पर हो गई है। वह अपनी ही कृतियों को मिटाकर प्रति मुख होकर प्रतिक्रिया के मार्ग

न्याय के आधार पर होना चाहिये। हमारी राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा आज के परिवर्तन के उस मोड़ पर पहुँच गई है जिस पर पुनर्जागरण के समय में ज्योतिष और विज्ञान के भौतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ था।

आज धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक एवं नैतिक समस्याओं का निदान एक राष्ट्रीय आधार पर खोजने का मिथ्या प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र में जो परिवर्तन हो चुके है उन्हे देखते हुये और विशेष रूप से औद्योगिक उत्पादन में जो क्रान्ति हो चुकी है उसे ध्यान में रखते हुये और विशेष रूप में औद्योगिक उत्पादन में जो क्रान्ति हो चुकी है उसे देखते हुये हमारी सामाजिक व्यवस्था में संसार व्यापी तथा मौलिक परिवर्तन करना अत्यन्तावश्यक हो गया है। आज की विषमता का आधार तो यह है कि हमारे विचार वास्तविक युग में पिछड़े हुये है। उनका सन्तुलन, सामजस्य सभी नष्ट हो चुका है। नवीन युग की आवश्यकताओं के अनुसार हमें नवीन व्यवस्था की पुष्टि करना चाहिये।

नवीन सामाजिक सृष्टि कार्य के करने में भी सभी युगों और कालों में मौलिक समानता तथा एक सूत्रता रही है वह है "मानव कल्याण" और उसकी "मुक्ति"। मनुष्य व्यवस्था मंदिर का देवता है और उसके इस देवत्व अधिकार को चिरस्थायी बनाये रखता है। आज के इस महान् निर्माण के

न्याय के आधार पर होना चाहिये। हमारी राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा आज के परिवर्तन के उस मोड़ पर पहुँच गई है जिस पर पुनर्जागरण के समय में ज्योतिष और विज्ञान के भौतिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन हुआ था।

आज धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक एवं नैतिक समस्याओं का निदान एक राष्ट्रीय आधार पर खोजने का मिथ्या प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र मे जो परिवर्तन हो चुके है उन्हे देखते हुये और विशेष रूप से औद्योगिक उत्पादन में जो क्रान्ति हो चुकी है उसे ध्यान मे रखते हुये और विशेष रूप से औद्योगिक उत्पादन मे जो क्रान्ति हो चुकी है उसे देखते हुये हमारी सामाजिक व्यवस्था मे संसार व्यापी तथा मौलिक परिवर्तन करना अत्यन्तावश्यक हो गया है। आज की विषमता का आधार तो यह है कि हमारे विचार वास्तविक युग से पिछड़े हुये है। उनका सन्तुलन, सामजस्य सभी नष्ट हो चुका है। नवीन युग की आवश्यकताओं के अनुसार हमे नवीन व्यवस्था की पुष्टि करना चाहिये।

नवीन सामाजिक सृष्टि कार्य के करने में भी सभी युगों और कालों मे मौलिक समानता तथा एक सूत्रता रही है वह है "मानव कल्याण" और उसकी "मुक्ति"। मनुष्य व्यवस्था मंदिर का देवता है और उसके इस देवत्व अधिकार को चिरस्थायी बनाये रखना है। आज के इस महान् निर्माण के

या मानव पर पारम्परिक आश्रित होने या उचित विधान और विधान द्वारा ही शासित व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्यों की मान्यता को स्थिर करना स्वतन्त्रता का मुख्य लक्ष्य होता है। आदर्शवादी शब्दों में स्वतन्त्रता सभी लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का समादर करे यह लक्ष्य किसे बुरा मालूम होगा। अभी तक राष्ट्र उक्ति नियम और विधानों की सृष्टि करता है। पूँजीवादी विधान के अन्तर्गत अपनी अन्तर्मूत संघर्षों , कारण और उत्पादन शक्तियों और साधनों में असामञ्जस्यता के उत्पन्न हो जाने के कारण व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप नष्ट हो जाता है। और व्यवस्था में जनता का प्रभाव ही अधिक हो जाता है। आज के संघर्ष का आधार अतिशय औद्योगिकता केन्द्रीय करण संकुचित राजनीतिक स्वतन्त्रता पर है। पूँजीवाद की आन्तरिक दोषों के कारण ही हमारी समस्याओं को निदान करने में असफल है।

समाजवाद के सम्बंध में हमें पुन विचार करना चाहिये। हेगेल के द्वन्द न्याय पर आश्रित होने के कारण मार्क्सवाद मानव समाज की एक रूपता को दो विरोधी गुणों में विभाजित करके व्यक्ति को वर्ग में विलय कर देता है। इसके साथ ही उसका यह दावा भी ठीक नहीं उतरा कि समाजवादी समाज की स्थापना के बाद राष्ट्र का स्वरूप नष्ट होकर केवल मानव समाज रह जायेगा जिसमें व्यक्ति शोषण से मुक्त

सभी देशों में आदर्श और आचरण तथा व्यक्ति और समाज के द्वन्द की विषमता उग्रतम रूप धारण करती जा रही है विश्लेषण और विवेचन के उपरान्त यह स्वीकार किया जाने लगा है कि आज का प्रचलित धर्म आज का पूँजीवादी प्रजातन्त्र, आज का रूसी साम्यवाद, आज के मानव कृत्यों की दुहाई में व्यक्ति का स्वतन्त्र स्थान नष्ट हो गया है। इस सामाजिक अराजकता और नैतिक विषमता के फल स्वरूप लौकिक व्यक्ति जिसने अपनी सद्वृत्तियों से आस्था खो दी है, जिसे वर्ग संघर्ष के द्वन्दात्मक प्रगति में विश्वास नहीं है, जो ईश्वर और धर्म को व्यक्ति के बन्धन के रूप में देखता और जो सामाजिक व्यवस्था में मानव के उस उदार समन्वय की आशा भी खो चुका है यह 'अस्तित्ववादी' दर्शन के प्रतिक्रियावादी गर्त में डूबने को उद्यत हो गया है। महात्मा गान्धी के दर्शन में हमें मानव के भविष्य में विश्वास रखने की अमर ज्योति तुल्य आशा का दर्शन होता है।

गांधी जी सामाजिक अन्याय और हिंसा को समूल नष्ट करना चाहते हैं। लेकिन बुराई को दूर करने के लिये उसने सहारा लेने के वे विरोधी हैं। हिंसा और युद्ध से युद्धों से मुक्ति नहीं मिल सकती। शान्ति के लिये सम्यक व्यवहार की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे से सम्मानपूर्ण व्यवहार करना चाहिये उसी प्रकार समस्त राष्ट्रों को एक दूसरे का समान सम्मान करना चाहिये यह व्यवहार शोषण की नीति के आधार पर नहीं बनाया जा सकता। साथ ही विभिन्न राष्ट्रों के बीच में उत्पन्न समस्याओं व झगड़ों के समझौते के मार्ग को ही वह श्रेयस्कर समझते हैं। दो महायुद्धों के अनुभव के बाद भी आज संसार को युद्धों से मुक्ति नहीं मिली है। मानव को वर्तमान संकट से निकालने के लिये गांधीजी ने एक प्रशस्त मार्ग का प्रदर्शन किया है। हमारी प्रत्येक समस्या के निदान में महात्मा गांधी का मौलिक व प्रधान योग है और इस सबके संयुक्त को सर्वोदय का नाम दिया गया है।

सर्वोदय समाज ऐसे भावी समाज का चित्रण है जिसमें व्यक्ति व्यक्ति के शोषण से मुक्त होकर वर्गहीन सामूहिक सहकारी समाज का सहयोग के आधार पर निर्माण करेगा। मनुष्य अपनी सद्वृत्तियों का विकास करके उदात्त सम्बन्धों के आधार पर प्रेम और सहयोग का वातावरण तैयार करेगा जिसको वास्तविक अर्थ में राम राज्य कहा जा सकेगा।

गांधीवादी दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन

गांधीवाद एक पूर्ण जीवन दर्शन है जिसमें सम्पूर्ण विश्व जीवन को मानव प्रगति के, पारस्परिक सम्बन्धों को, वैयक्तिक जीवन के विभिन्न अंगों और सम्बन्धों का, ज्ञान, विज्ञान को, सभ्यता और संस्कृति की प्रगति को नापने का उस पर विचार करने का, और उनसे निष्कर्ष निकालने का, इसका अन्य दर्शनों से भिन्न अपना एक दृष्टिकोण है। प्रत्येक दर्शन की भांति यह निश्चय ही है कि गांधीवाद अपने दर्शन में ही सत्य की अभिव्यंजना को स्वीकार करता है। उसे सही और शाश्वत समझता है उसे इतिहास सिद्ध, प्रकृति सिद्ध और श्रेय मानता है। इससे भिन्न दृष्टि एकांगी अपूर्ण और विकास के तथ्य के विपरीत मानी जाती है।

मानव समाज की प्रगति के लेखे जोखे का इतिहास कहा जाता है। इतिहास सामाजिक जीवन ही नहीं प्राकृतिक विकास का व्यापक विषय है। इसके अन्तर्गत सभी विषयों की प्रगति की क्रमबद्धता और सामाजिक विकास की शृंखला का हमें दर्शन मिल जाता है। यदि इसको व्यापक रूप में देखें तो समग्र जीवन प्रगति लेखा का नाम ही इतिहास है। इतिहास को भिन्न भिन्न लोगों ने विभिन्न दृष्टियों से देखा है और उससे अलग

५२२२

किया है। हिंसा तथ्य को सत्य स्वीकार कर प्रगति का विश्लेषण करने वालों ने हिंसक प्रवृत्ति घटनाओं और तथ्यों का अधिक संकलन किया है और उसी आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले है। इसी के आधार पर विश्व के सारे सम्बन्ध स्वार्थ और हिंसा पर आश्रित बतलाये गये हैं और जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये हिंसा में सबल होने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। परिणाम स्वरूप आज चारों ओर हिंसा और हिंसा के साधनों की होड़ मची हुई है। गाधी जी का दृष्टिकोण इससे भिन्न रहा है। उन्होंने कहा है कि अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी लक्ष्य की ओर स्वभावतः परन्तु अनजान मे ही जा रही है। अहिंसा का क्रमश विकास रहा है। विश्व जीवन मे उसके क्षेत्र का विस्तार हो रहा है और दूसरी ओर हिंसा के क्षेत्र का ह्रास हो रहा है हिंसा, असहाय, असमर्थ दशा का अवलम्ब मात्र हो रही है। वह विकृत मनोदशा का परिणाम है। मानव स्वाभावेन शान्ति प्रकृति का होता है अतः वह अहिंसक होता है और अहिंसा उसे प्रिय होती है मानव ने अहिंसा की ओर प्रगति की है और वह उस ओर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है। हिंसा मानव जातिके विरुद्ध, अक्षम्य अपराध है।

सम्पूर्ण समाज के सामाजिक सम्बन्धों के आधार का यदि हम विश्लेषण करें तो हमें अहिंसा, प्रेम और अन्योन्याश्रयता की दृढ़ शृंखला मिलेगी जो समाज को संगठित बनाये रखती

किया है। हिंसा तथ्य को सत्य स्वीकार कर प्रगति का विश्लेषण करने वालों ने हिंसक प्रवृत्ति घटनाओं और तथ्यों का अधिक संकलन किया है और उसी आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले हैं। इसी के आधार पर विश्व के सारे सम्बन्ध स्वार्थ और हिंसा पर आश्रित बतलाये गये हैं और जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये हिंसा में मग्न होने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। परिणाम स्वरूप आज चारों ओर हिंसा और हिंसा के साधनों की होड़ मची हुई है। गांधी जी का दृष्टिकोण इससे भिन्न रहा है। उन्होंने कहा है कि अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी लक्ष्य की ओर स्वभावतः परन्तु अनजान में ही जा रही है। अहिंसा का क्रमशः विकास रहा है। विश्व जीवन में उसके क्षेत्र का विस्तार हो रहा है और दूसरी ओर हिंसा के क्षेत्र का ह्रास हो रहा है हिंसा, असहाय, असमर्थ दशा का अवलम्ब मात्र हो रही है। वह विकृत मनोदशा का परिणाम है। मानव स्वाभावेन शान्ति प्रकृति का होता है अतः वह अहिंसक होता है और अहिंसा उसे प्रिय होती है मानव ने अहिंसा की ओर प्रगति की है और वह उस ओर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है। हिंसा मानव जातिके विरुद्ध, अक्षम्य अपराध है।

सम्पूर्ण समाज के सामाजिक सम्बन्धों के आधार का यदि हम विश्लेषण करें तो हमें अहिंसा, प्रेम और अन्योन्याश्रयता की दृढ़ शृंखला मिलेगी जो समाज को संगठित बनाये रक्खे।

किया है। हिंसा तथ्य को सत्य स्वीकार कर प्रगति का विश्लेषण करने वालों ने हिंसक प्रवृत्ति घटनाओं और तथ्यों का अधिक संकलन किया है और उसी आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले हैं। इसी के आधार पर विश्व के सारे सम्बन्ध स्वार्थ और हिंसा पर आश्रित बतलाये गये हैं और जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये हिंसा में सचत होने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। परिणाम स्वरूप आज चारों ओर हिंसा और हिंसा के साधनों की होड़ मची हुई है। गांधी जी का दृष्टिकोण इससे भिन्न रहा है। उन्होंने कहा है कि अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी लक्ष्य की ओर स्वभावत: परन्तु अनजान में ही जा रही है। अहिंसा का क्रमश: विकास रहा है। विश्व जीवन में उसके क्षेत्र का विस्तार हो रहा है और दूसरी ओर हिंसा के क्षत्र का ह्रास हो रहा है हिंसा, असहाय, असमर्थ दशा का अवलम्ब मात्र हो रही है। वह विकृत मनोदशा का परिणाम है। मानव स्वाभावेन शान्ति प्रकृति का होता है अत: वह अहिंसक होता है और अहिंसा उसे प्रिय होती है मानव ने अहिंसा की ओर प्रगति की है और वह उस ओर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है। हिंसा मानव जातिके विरुद्ध, अक्षम्य अपराध है।

सम्पूर्ण समाज के सामाजिक सम्बन्धों के आधार का यदि हम विश्लेषण करें तो हमें अहिंसा, प्रेम और अन्योन्याश्रयता की दृढ़ शृंखला मिलेगी जो समाज को संगठित बनाये रखती

म्यत: मार्क्स ने मानव की इस प्रगति को स्वीकार करके हेगेलके द्वन्द न्याय के सिद्धान्त के चक्कर में आकर वर्गऔर श्रेणी के पाट से अपने को बांध कर मानव विकास की धारा के साथ बहने के स्थान पर डूब जाने को ही स्वीकार कर लिया है। हमें इस नवीन दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन करना चाहिये।

के कारण उसमें उन व्यक्तियों में भी अनुराग होने लगा जो उसके निकट रहते थे जिनसे उसका सम्पर्क रहता था। समूह की भावना के दृढ़ होने और सुख के साथ जीवन बिताने की भावना ने, मानव में किंचित द्वेष राग की भावना को जन्म दिया। एक समूह दूसरे के शोषण के द्वारा सुख पाने की इच्छा करने लगा। समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध हुये। संघर्ष और स्वार्थ के उपरान्त उनमें एकता हुई। विभिन्न समुदाय एक हो गये। नवीन अधिक विस्तृत क्षेत्र वाली संस्थाओं का जन्म हुआ। छोटे छोटे राज्यों के स्थान पर चक्रवर्ती राज्यों की कल्पना ने केन्द्रीय स्थान ले लिया। आधुनिक सामन्तवाद, राष्ट्र और उनके बाद साम्राज्यों का विकास हुआ इन सभी विकास क्रम को यदि निष्पक्ष होकर देखें तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि सम्पूर्ण मानव जाति के विभिन्न प्रवाह एक दूसरे से मिलते हुये एक पुष्ट धारा के रूप में विकसित होते जा रहे हैं। पहले जहां मनुष्य कुटुम्ब, समूह, ग्राम, क्षेत्र, नगर, प्रदेश, देश राज्यों को घना कर रहता था वहां अब वह एक विश्व राज्य की ओर अग्रसर हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भिक अवस्था का मानव प्रेम और सहयोग जिसका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित था और अत्यन्त विप्लित हो गया है आज वैयक्तिक हिंसा प्रत्येक स्थान में निषिद्ध है। ग्राम, क्षेत्र, नगर और प्रदेशों की हिंसा सभी राष्ट्र के सङ्गठन के बाद निषिद्ध हो गई थी। आज तो

र्पण करने के साथ ही मानव समाज एक मनुष्य समाज पदार्पण कर सकेगा जिसमें मनुष्य, "मनुष्यत्व" की उच्च ा है, सामुहिक सामाजिक ज्ञान से सचेत होकर केवल आत्मा की मुक्ति और मोक्ष के लिये सहर्ष बलिदान एवं करने के लिये तत्पर होगा

पर्युक्त मानव समाज निर्माण के पूर्व हमे ऐसे मानवों रकास करना है जिससे वे अपने ऐतिहासिक कर्तव्य को कर सके। कर्तव्य पूर्ति के लिये ज्ञान परमावश्यक है। क व्यक्तिगत जीवन में हम जिस हिंसा का साक्षात्कार । है वह पूर्णत: निन्दित और दयनीय है। इसका मूल ए व्यक्तिगत सम्बन्धों की असंगति है चाहे वह उत्पादन साधनों के स्वामित्व की बात हो अथवा उत्पादन के वितरण समस्या हो। लेकिन एक बात यह न भूलना चाहिये कि । हिंसा की कारण वृत्ति के विनाशके लिये हिंसा का प्रयोग धीवाद मे श्रेयस्कर नहीं माना गया है। इसके साथ ही हमें ह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक अर्थपद्धति का विकास ानव इतिहास के एक निश्चित काल मे होता है और अव- था भेद होने पर व्यवस्थाएँ भी नष्ट हो जाती है उनके मन्तर से ही नवीन दूसरी व्यवस्थाएँ उदभूत होकर सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। आज की यांत्रिक उन्नति के आधार पर कहा जा सकता है कि अधिक समय उत्पादन के साधनों को एक व्यक्ति अथवा वर्ग की इच्छा पर

प्राणियों के दैनिक जीवन की प्रवृत्तियों को अंकित किया है और उससे यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राणीमात्र में संघर्ष, हिंसा और असहयोग की प्रवृत्ति की अपेक्षा अहिंसा, सहयोग की प्रवृत्ति अधिक सबल है और उसका विकास भी हो रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से मानव की अपेक्षा मानवतर प्राणियों में अहिंसा और सहयोग की प्रवृत्ति अधिक है। हिंसा व संघर्ष का मूल कारण संग्रह वृत्ति है। जर, जमीन और जोरू की संग्रह वृत्ति मानव में अत्यधिक मात्रा में आज दिखाई दे रही है। यदि संग्रह को छोड़ कर केवल उपभोग भर का प्रयोग करके ऊपरी सद्वृत्ति से काम लिया जाय तो किसी को किसी वस्तु की कमी न रहे। मानव में अन्य प्राणियों का अपेक्षा बुद्धि तत्त्व अधिक है अत उसमें अनेक बलिष्ठ तथा मिश्रित प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गई है वह अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक संग्रही और कामी हो गया है। यदि वह अन्य प्राणियों की भांति केवल प्राकृतिक स्वभाव और नियमों के आधीन चले तो वह अपनी स्थिति को स्वयं सुधार सकता है। मानव अपनी बुद्धि वैभव से प्रकृति को अपने वश में करके चलता है अत. मानवतर प्राणियों से कम श्रम के द्वारा अपने उपभोग की वस्तुओं का उत्पन्न कर सकता है और उसका मानव समाज में समुचित वितरण कर सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से भी हमारे पूर्व कथन की सत्यता, प्रमाणित होती है कि अहिंसा प्राकृतिक नियम और गुण है।

गांधीवादी दर्शन और नैतिकता

"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे, पीर, पराई, जाने, रे"

संसार के समस्त प्राणियों से आत्म भाव या सिद्धान्त इनका मूल सिद्धान्त है। समस्त मनुष्य समान हैं, सभी की मुक्ति का सद् प्रयत्न होना चाहिये। महात्मा गांधी उन धार्मिक नेताओं से भिन्न हैं जो एक व्यक्ति की मुक्ति साधन को अपना लक्ष्य बना लेते हैं। महात्मागांधी के अनुसार जगतात्मा को उस समय तक शान्ति नहीं मिल सकती जब तक एक भी आत्मा दुःखित अथवा उत्पीड़ित है।

गांधीवादी दर्शन और नैतिकता

गांधीवाद तत्व ज्ञान के सम्बन्ध में वाद विवाद पूर्ण स्थिति में बिना पड़े, मानवतावादी समन्वयी दृष्टिकोण को लेकर चलता है। महात्मा गांधी ईश्वर में पूर्ण आस्था रखते थे, लेकिन उनके ईश्वर स्वरूप विभिन्न धर्मों में वर्णित ईश्वर की परिभाषा से भिन्न है। ईश्वर और सत्य का वे पर्याय वाची शब्दों के रूप में प्रयोग करते थे। सत्य के शुभ्र लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे सदैव अहिंसा को प्रमुख साधन मानते थे। अहिंसा व्रत में सफल होने के लिये आत्म संयम और अपरिग्रह की आवश्यकता पर जोर देते थे। महात्मा गांधी अपने को सच वैष्णव कहते थे। वैष्णव की परिभाषा उनके अत्यन्त प्रिय भजन से मिलती है।

"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे, पीर, पराई, जाने, रे"

संसार के समस्त प्राणियों से आत्म भाव का सिद्धान्त उनका मूल सिद्धान्त है। समस्त मनुष्य समान हैं, सभी की मुक्ति का सद् प्रयत्न होना चाहिये। महात्मा गांधी उन धार्मिक नेताओं से भिन्न है जो एक व्यक्ति की मुक्ति साधन को अपना लक्ष्य बना लेते हैं। महात्मागांधी के अनुसार जगतात्मा को उस समय तक शान्ति नहीं मिल सकती जब तक एक भी आत्मा दु:खित अथवा उत्पीड़ित है।

गांधीवादी दर्शन और नैतिकता

सामाजिक इतिहास का अतिक्रमण करना है। व्यवहारिक रूप से मानव की यह अपनी नैतिक समस्या है। इसके लिये उसे सुदृढ़ विश्वास, सत्य और सदाचार का आश्रय लेना पड़ता है।

भारत आधुनिक शिक्षा की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ देश है। यहाँ के ३० करोड़ जनमत को उद्बोधित करने की एक दुष्कर समस्या है। महात्मा गांधी जैसा कि पहले कहा कि व्यवहारिक मानवतावादी धार्मिक वृत्ति के महात्मा थे। उनके अपने विश्वास उनके व्यक्तित्व तक ही सीमित नहीं थे। उनका एक सामाजिक स्वरूप था। महात्मा गान्धी के चरित्र मे सबसे विलक्षण बात यह थी कि उन्होंने जिन बातों को, जिन विश्वासो को जनता के सामने रखा वे ऐसी नहीं थी जो अतीत से अथवा भूल से एक दम विच्छिन्न हों। सामाजिक संस्कारों का वे आदर करते थे और उन्हें नवीन युगों की आवश्यकताओं के अनुसार मोड़ देने की चेष्टा करते थे। हमारे कहने का उतना ही तात्पर्य है कि जिस प्रकार एक व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति से जगतात्मको शान्ति नहीं मिल सकती इसी तर्क के आधार पर एक व्यक्ति के ज्ञान से समस्त जगत उद्भासित नहीं हो सकता। ज्ञान के लिये वातावरण और शिक्षा की नितान्त आवश्यकता होती है। ज्ञान के पूर्व उसकी पृष्ठ भूमि की तैयारी की आवश्यकता होती है। इन तैयारियों के पहले ही इस बात मे विश्वास करना कि जनसाधारण नवीन ज्ञान के प्रभाव में अपने पूर्व विश्वासों को छोड़ देगा एक नितान्त

निश्चित एक नीति की परिभाषा स्पष्ट की जा सकती है । इस प्रकार समस्त व्यक्तियों की अलग-अलग व्यक्तित्व को समग्र रूप से एक साथ एक विश्वात्मा के रूप में अपनाने से व्यक्ति के एक व्यक्तित्व के लोप का भय हो सकता है लेकिन यदि प्रत्येक व्यक्ति में अपने व्यक्तित्व और प्रकृति तथा समाज में अपने स्थान के सम्बन्ध में उचित ज्ञान है तो वह व्यक्ति प्राकृति स्वभाव के आधार पर नैतिक आचरण और सदाचार को अपनाता होगा। कुछ लोगों का विचार है कि मनुष्य में नैतिकता के प्रति आस्था उत्पन्न करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि उसकी धार्मिक रूढ़ियों को पुनस्संगठित किया जाय। दूसरे लोग धार्मिक रूढ़ियों के ऊपर मानव की अपनी क्रियाशीलता तथा व्यक्तित्व को सुप्त बना देने का आरोप लगाते हैं।

कुछ भी हो महात्मा गांधी ने जिस रूप में मध्ययुगीन धार्मिक विश्वासों को अपना कर जनता को अशिक्षित और निरक्षर जनता को, एक निर्दिष्ट उद्देश्य की ओर सचल बना दिया उससे स्पष्ट है कि महात्मा गांधी का धार्मिक दृष्टिकोण शास्त्रीय अर्थ में धार्मिक नहीं था वरन् वह एक भयंकर सामाजिक शक्ति का परिचायक है।

करने में राज्य की शक्ति तक का प्रयोग करना पड़ रहा है। द्वान्द्वात्मक भौतिक वाद के आधार पर एक नवीन नियतिवाद को स्थापित किया जा रहा है अतः ऐसी स्थिति में साधारण व्यक्ति में सामाजिक भावना तथा व्यक्तिगत स्वार्थों के प्रयोग से सामाजिक प्रगति में मानव की जिज्ञासा को उद्दीप्त करने तथा उसे स्वयं उनकी परिश्रान्ति करने की क्षमता देने में सहायता मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाधी के धार्मिक विचार मनुष्यों में सामाजिक दृष्टि, उत्पन्न करने वाले थे और उनके द्वारा नवीन सत्यों को स्वीकार करने का मार्ग सदैव खुला रहता है।

महात्मा गांधी की सबसे बड़ी देन साध्य के साथ ही साधन की पवित्रता है। मानव की पवित्रता की प्राप्तिके लिए अनुचित साधनों का, घृणा और हिंसा के प्रयोग को स्वीकार नहीं करते थे। अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधनों को भी अनिवार्य रूप से पवित्र होना चाहिए। स्पष्ट है कि यदि मानवता के लक्ष्य को प्राप्त करने में व्यक्ति को अपनी मानवीआत्मा का ही हनन करना पड़े तो निश्चित है कि लक्ष्य भ्रष्ट हो जायेगा। साधन की अपवित्रता साध्य को भी ले डूबेगी। यही कारण है महात्मा गांधी ने मानव को समाज केन्द्रीय स्थल पर प्रतिष्ठित

गांधीवादी राजनीति

गांधीवादी राजनीति, राजनीति का आधुनिक विकसित स्वरूप है। प्रजातान्त्रिक क्रान्ति के बाद सामन्तवादी पद्धतियों का संसार से शनैः विलोप हो गया और उनके स्थान पर प्रजातांत्रिक संस्थाओं का निर्माण हुआ। प्रजातन्त्र ने मानव को पूर्व व्यवस्था के अनुपात से अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की। व्यक्ति ने परिवार, कुटुम्ब, जाति समूह और धार्मिक सीमाओं को पार करके राष्ट्र की नवीन विस्तृत सीमाओं का सृजन किया। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व के अधिकार दिये जाने की घोषणायें की गईं। प्रजातन्त्र की हमें जो परिभाषायें मिलती हैं उसमें उसे जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिये राज्य बतलाया गया है। हम पिछले १५० वर्षों से इस प्रजातांत्रिक युग में रह रहे हैं फिर भी मानव आज स्वतन्त्र नहीं है उसके शोषण का अन्त नहीं हुआ है। स्वयं प्रजातांत्रिक व्यवस्था ऐतिहासिक परीक्षा में असफल हो चुकी है।

प्रजातन्त्र के अतिरिक्त जो दूसरी व्यवस्थायें हमारे सामने आई हैं उन्होंने भी वर्तमान राजनैतिक असंगति को दूर करने के स्थान पर उसे बढ़ा ही अधिक दिया है। फासिज्म जहां पंजी-

सामाजिक व्यवस्था में अपनी मानवीय सद्वृत्तियों के आधार पर कर्तव्य और अधिकारों का प्रयोग करने को स्वतन्त्र हो। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मानव के सद् 'स्व' का राज्य हो अतः उन्होंने रामराज्य को ही वास्तविक स्वराज्य तथा सुराज भी कहा है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर भी वर्तमान मानव इतिहास के वर्ग संघर्ष की इतिश्री वर्गहीन मानव समाज में है। वर्गहीन मानव समाज में राज्य के विलोप की कल्पना की गई है। इसके बाद राजकीय व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके बाद सम्पूर्ण मानव समाज केवल कौटुम्बिक समाज के रूप में परिणित हो जाता है। वर्गहीन विश्व कुटुम्ब की कल्पना और महात्मागांधी के सर्वोदय में अन्तर नहीं है। स्वयं महात्मागांधी ने यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया है कि वे अहिंसक साम्यवादी हैं। उनका लक्ष्य भी वर्गहीन शोषणहीन मानव समाज है।

मार्क्सवाद से महात्मा गान्धी इस अर्थ में और आगे बढ़ जाते हैं कि वे वर्ग हीन मानव समाज की स्थापना के लिये किसी व्यापक रक्त रंजित प्राप्ति के साधन में विश्वास नहीं करते। महात्मा गान्धी अपने साध्य अथवा लक्ष्य की प्राप्ति के लिये नैतिक साधनों के प्रयोग के पक्ष में हैं। वे रक्त रंजित प्राप्ति अथवा वर्ग संघर्ष के प्रयोग के प्रतिकूल हैं। उनका कहना है कि समाज मानवों की समष्टि है और इसके स्वार्थ और

संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिये समाज के, बहुसंख्यक भाग के हितों की बलि चढ़ा दी गई। पूँजीवाद के आरम्भ में व्यक्ति को जो राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी वह भी आर्थिक शृङ्खलाओं में जकड़ दी गई है। उसको मिलने वाले आर्थिक अधिकार जिसे सम्पत्ति के पवित्र अधिकार नाम से पुकारा जाता है वह भी अर्थहीन हो गये हैं। आज पूँजीवाद के नाम से समाज की राजनीतिक, व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था पर अत्यन्त अल्प संख्यक वर्ग पूँजीपति वर्ग के तथाकथित पदाधिकारी व्यक्तियों का अधिकार हो गया है। यह लोग अपने संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिये राज्य, युद्ध और विनाश के नाटक खेला करते हैं। यह लोग सम्पूर्ण सामाजिक दृष्टिकोण को छोड़ देते हैं। स्वयं पूँजीवादी व्यवस्था और राजनीति के अन्तः विरोध के कारण पूँजीवादी व्यवस्था गत राज्यों को पूँजीवादी हितों पर अंकुश लगाना पड़ता है और उत्पादन के साधनों को केवल पूँजीवादी उद्योगपतियों की इच्छा पर ही नहीं छोड़ दिया जाता है।

आज के अन्तर्द्वन्द पूर्ण पूँजीवादी राज्यों में और नवीन समाजवादी पद्धति रूस में इन दोनों ही स्थानों पर दो भिन्न दृष्टिकोण से प्रजातांत्रिक प्रणाली को अपनाने का दावा किया जाता है। लेकिन दोनों ही पद्धतियों के अध्ययन से यह साफ जाता है कि राज्य तो जनता के द्वारा है और न जनता का ही है। यह हो सकता है कि वह जनता के नाम पर

शीलता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें सम्पत्ति के मोह को बनाये रखा जाय और सम्पत्ति के स्थान को स्वीकार करने के बाद राज्य शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता होती है। राज्य शक्ति के संगठन के बाद केन्द्रीयकरण और उसके साथ ही साथ नौकरशाही आदि के अनेक दोष अनिवार्य रूप से आवश्यक हो जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि मानव की सहज सुन्दर भावना उसे अत्यन्त स्वार्थी बना देती है और उस भावना को रोकने के लिये प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में राज शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो मानव के व्यवहार और आचरण पर नियन्त्रण रखे।

महात्मा गांधी मौलिक रूप से मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं और उनके विचारों के अनुसार मनुष्य स्वार्थी नहीं है। साथ ही सम्पत्ति मानव इतिहास में बाद में उत्पन्न हुई थी अतः मानव की क्रियाशीलता के लिये सम्पत्ति के लालच की कोई आवश्यकता नहीं है। दोष साधारण व्यक्ति का नहीं है। मूल दोष तो उस व्यवस्था का है जिसमें व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत नैसर्गिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। व्यक्ति का समूह, जाति, धर्म, राष्ट्र आदि समिष्टगत स्वरूपों में आत्मविलाप कर दिया जाता है उसके व्यक्तित्व को दूसरे व्यक्तित्व के साथ समान स्तर पर समन्वय नहीं किया जाता है। व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रखते हुये भी उसमें सम सामाजिक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने में शक्ति के प्रयोग से

गांधीवादी अर्थ पद्धति

प्रत्येक प्रकार के मानव समाज की नींव उस समाज विशेष की अर्थ पद्धति होती है। अर्थ पद्धति के अन्तर्गत, सामाजिक व्यवस्था के वे सम्बन्ध आते हैं जिनका आधार उत्पादन और वितरण होता है। उत्पादन क्रम में व्यक्ति को किस प्रकार श्रम करना पड़ता है और उसके श्रम के बदले में उसे किस न्याय के आधार पर जीविकोपार्जन के लिये वेतन अथवा मजदूरी दी जाती है। यह सभी बातें अर्थ पद्धति के अन्तर्गत आ जाती है।

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को पूंजीवाद कहा जाता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन के समस्त साधनों पर कुछ व्यक्तियों का स्वामित्व रहता है और इस स्वामित्व अधिकार वाले व्यक्तियों का एक वर्ग बन जाता है जिसे पूंजीपति वर्ग कहा जाता है। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था अपने इतिहास के आरम्भिक युग में सामन्तवादी व्यवस्था की तुलना में प्रगतिशील व्यवस्था थी। इस व्यवस्था ने मानव संगठन क्षेत्र को सीमित और संकुचित सामन्त शासकों के राज्यों के स्थान पर राष्ट्रीयता [illegible] दिया। व्यक्तियों को राजनीतिक समा- [illegible] इच्छानुकूल पेशे चुनने की

महात्मा गांधी के आर्थिक व्यवस्था की मुख्य बात यह है कि वह उत्पादन को मानवीय आधार पर संगठित करना चाहते हैं। मनुष्य यांत्रिक उत्पादन पद्धति में कितनी प्रगति करने के बाद पृथ्वी अर्थात् प्राकृतिक उत्पादन के साधनों पर आश्रित रहता है अतः महात्मा गांधी ने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि पृथ्वी को उत्पादन का प्रधान स्रोत मानना चाहिये। इसके साथ ही वह यन्त्रों के प्रयोग को उसी सीमा में अपनाने के पक्ष में हैं जिसमें उत्पादन का स्वरूप मानवीय बना रहे। महात्मा गांधी ने आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी जितने प्रयोग किये हैं उनमें इसी बात को मूलाधार स्वीकार किया गया है।

कुछ लोगों की ओर से गांधीवाद पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसमें यन्त्रों का विरोध है और आधुनिक विकास में उत्पादन क्रम से यन्त्रों का बहिष्कार करने की बात करने वाला प्रगतिशील स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस आक्षेप के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि महात्मा गांधी यन्त्रों के उत्पादन क्रम में प्रयोग के विरोधी नहीं हैं। उनका विरोध मानव के यंत्रीकरण का है। वे मानव का पतित होकर यंत्र का उपादान बना देने के विरोधी हैं।

गांधीवादी अर्थ पद्धति के विशेषज्ञ आचार्य श्री मन्नारायण अग्रवाल ने इस बात को भी हाल में स्पष्ट कर दिया है कि गांधीवाद यंत्र प्रयोग का विरोधी नहीं है।

ाणहीन, आत्माहीन, विवेक और बुद्धिहीन यन्त्र मात्र रह जाता है। आज की सबसे बड़ी समस्या तो इस बात की है कि मानव को स्वतंत्र होकर स्वार्थान्ध नहीं वरन् विवेक पूर्ण सामाजिक प्राणी बनाना है। इसके लिये मानव समाज को ऐसी अर्थ पद्धति को विकसित करना पड़ेगा जिसमें उत्पादन प्रणाली का केन्द्रीकरण न हो। उत्पादन मानव उपयोग की पूर्ति के उद्देश्य से हो। मनुष्य के लिये उत्पादन हो उत्पादन के लिये मनुष्य न हो और उत्पादन प्रणाली मानवीय आधार पर ही संगठित हो।

मानवीय आधार पर मानव की सृष्टि के लिये होने वाले उत्पादन के लिये यह आवश्यक है कि वह पृथ्वी के सभी भागों में समान रूप से वितरित हो और प्रत्येक देश में क्षेत्र, विशेष के रहने वाले अपने क्षेत्र के उत्पादन का नियन्त्रण करें उत्पादन करने में सभी का समान योग हो। मानसिक श्रम के साथ ही सभी व्यक्ति यथाशक्ति और आवश्यकतानुसार शारीरिक परिश्रम भी करें। महात्मागांधी ने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उत्पादन क्रम में प्रत्येक मनुष्य को पूर्ण योग देने का विधान किया है। उत्पादन को विकेन्द्रित रूप में संगठित करने के लिये यह आवश्यक है कि अलग अलग क्षेत्रों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति यथाशक्ति उसी क्षेत्र के उत्पादन से की जाय उत्पादन के इस विकेन्द्रीकरण के साथ ही कुछ ऐसी वस्तुयें भी रहेंगी जिनका एक

उत्पादन की इस नवीन प्रणाली को निश्चित रूप से सामाजिक आधार पर ही संगठित किया जा सकेगा क्योंकि अणु शक्ति के उत्पन्न करने की शक्ति आज किसी भी देश के पूंजीपति वर्ग में नहीं है। साथ ही अभी तक प्रयोगात्मक अवस्था में इस सम्बन्ध में जितने प्रयास किये गये हैं। उनमें राष्ट्रों ने सामूहिक रूप से राष्ट्र की ओर से ही प्रयत्न किया है। वैज्ञानिकों का मत है कि यदि वैज्ञानिक साधनों का केवल रचनात्मक प्रयोग किया जाय तो संसार के समस्त व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति प्रति व्यक्ति पीछे एक घन्टे का श्रम करना पड़ेगा। गांधीवाद वैज्ञानिक साधनों के रचनात्मक प्रयोग का विरोधी नहीं है।

विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था के संगठन के लिये यह भी आवश्यक होगा कि भूमि और यन्त्रों के उत्पादन की असमानता को नष्ट कर दिया जाय। यही कारण है कि गांधीवाद अर्थ पद्धति में कृषि को उसके महत्वपूर्ण स्थान से अलग नहीं किया जा सकता। साथ ही विकेन्द्रित रूप से यन्त्रों के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाता है। इस अर्थ पद्धति में उत्पादन क्रम की जनता की आवश्यकताओं को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है और उसको जनता के लिये योजनात्मक आधार पर संगठित किया गया है। योजना और उत्पादन क्रम में उत्पादन के साधनों पर न तो व्यक्तिगत स्वामित्व रहता है और न अतिशय केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप शक्ति

गांधीवाद और मानव

गांधीवाद यथार्थत मानववादी दर्शन है। इस विचारधारा के अनुसार संसार की एकता और प्राकृतिक एक तत्ववाद के आधार पर मानव समाज को प्रकृति का अविच्छिन्न अंग स्वीकार किया जाता है। मानव तथा प्रकृति की उत्पत्ति के आध्यात्मिक तथा विज्ञान के वाद विवाद में नहीं पड़ता है। प्रधानत. गांधीवाद सामाजिक नीतिशास्त्र है जिसमें अप्रत्यक्ष लौकिक एवं अलौकिक कारणों के वाद विवाद में न पड़कर मानव और मानव समाज के उसके कर्त्तव्य का निश्चय करने का मानवीय प्रयत्न किया गया है।

समन्वयवादी दृष्टिकोण होने के कारण और वर्तमान वैज्ञानिकों के विभिन्न मतभेदों के कारण वह विज्ञान के सभी तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रारम्भ में ही स्वीकार नहीं कर लेता है। मनोविज्ञान को भी इसमें यथेष्ट स्थान दिया गया है। साधारण जनता के विश्वासों के विकास का एक क्रम होता है जिसका स्वरूप समन्वयवादी ही है। किसी पूर्व विश्वास को केवल असामयिक अथवा विज्ञान द्वारा अप्रमाणित करके व्यक्तियों के मन से एकाएक नहीं हटाया जा सकता। पूर्व मिथ्या विश्वास के नष्ट होने के लिये यह सबसे अधिक

चलने वाला क्रम है फिर भी प्रत्येक युग मे मानव समाज में कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को स्वीकार किया जाता है। अपने युग मे वे पूर्व युग के वैज्ञानिक निष्कर्षों के आधार पर बने हुये मानव विश्वासों का विरोध करके एक नवीन विश्वासों के लिये स्थान बनाते हैं। और भावी युग में जब इन निष्कर्षों के आधार पर जनता में विश्वास और एक व्यवस्था अथवा भाव के प्रति विश्वास दृढ हो जाता है। तो पूर्व वैज्ञानिक ज्ञान स्वत. जड़ मूढ ज्ञान का आश्रय बन जाता है। विचारों के इस द्वन्द्व पूर्ण विकास का केवल द्वन्द्वात्मक रूप नहीं है उसका समान रूप भी समन्वयवादी है। इस दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्ति को समाज के अन्दर कार्य करने मे एक सामाजिक दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्ति की नैतिकता और उसके मानव मूल्यों का स्वतन्त्र तथा सुदृढ़ करने की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार व्यक्ति मे सामाजिक दृष्टिकोण की उत्पत्ति के लिये उसको अनिवार्यत: समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है।

हमारे देश में इस समय पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस प्रकार के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कोई भी यह नहीं कह सकता कि वे रहस्यवादी हैं। उन्हों ने स्वयं अपने विचारों का आधार विज्ञान को और भौतिकवादी विचार को माना है लेकिन आज कल वे मानव के उत्कर्ष के विकास के लिये

चलने वाला क्रम है फिर भी प्रत्येक युग में मानव समाज में कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को स्वीकार किया जाता है। अपने युग मे वे पूर्व युग के वैज्ञानिक निष्कर्षों के आधार पर बने हुये मानव विश्वासों का विरोध करके एक नवीन विश्वासों के लिये स्थान बनाते हैं। और भावी युग में जब इन निष्कर्षों के आधार पर जनता में विश्वास और एक व्यवस्था अथवा भाव के प्रति विश्वास दृढ हो जाता है। तो पूर्व वैज्ञानिक ज्ञान स्वत. जड़ मूढ ज्ञान का आश्रय बन जाता है। विचारों के इस द्वन्द्व पूर्ण विकास का केवल द्वन्द्वात्मक रूप नहीं है उसका समान रूप भी समन्वयवादी है। इस दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्ति को समाज के अन्दर कार्य करने मे एक सामाजिक दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्ति की नैतिकता और उसके मानव मूल्यों का स्वतरथ तथा सुदृढ करने की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार व्यक्ति मे सामाजिक दृष्टिकोण की उत्पत्ति के लिये उसको अनिवार्यत समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है।

हमारे देश में इस समय पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस प्रकार के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कोई भी यह नहीं कह सकता कि वे रहस्यवादी हैं। उन्हों ने स्वय अपने विचारों का आधार विज्ञान को और भौतिकवादी विचार को माना लेकिन आज कल वे मानव के उच्चस्य [illegible] के

जिसका तात्पर्य केवल इतना है कि वे मानव समिष्ट को ही सर्वोपरि मानते थे और मानव विकास के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं और विघ्नों को नष्ट करना चाहते थे। इस से महात्मा गाँधी युग के सबसे बड़े क्रान्तिकारी नेता कहे जायेंगे। यह सत्य है कि शोषण विहीन समाज उच्च लक्ष्य प्राप्ति के लिए किसी अपवित्र अनुचित नैतिकता विहीन मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकते थे। इस बात से भी यह प्रमाणित होता है कि महात्मा गांधी मानवता को सबसे पवित्र मानते थे और उसके विकास के लिये आत्मशुद्ध, त्याग और बलिदान के पवित्र निस्वार्थ मार्ग को अपनाने के पक्ष में थे।

सर्वोदय

सर्वोदय मानव समाज के विकास क्रम की वह स्थिति है जिसमें मानव समाज अपनी समस्त लघु सीमाओं को पार करके शोषण विहीन सामूहिक, सहयोग, मानव समाज की रचना करता है। मानव की मानवता अपने शुद्ध और आकर्षण स्वरूप में विकसित होकर मानव के सम्पूर्ण विकास, प्रस्फुटन और उन्नति के अवसर को प्रदान करती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और समष्टि के विकास में ऐसा समन्वय और सन्तुलन हो जाता है जिसमें किसी के ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नहीं रह जाता। समाज के विकसित रूप में व्यक्ति का पूर्ण विकास होता है। अज्ञान, लोभ, स्वार्थ, भय और हिंसा की समस्त परिसीमायें नष्ट हो जाती है और मानव में सामाजिक सहयोगी दृष्टिकोण के आधार पर प्रेम और त्याग का प्रभाव अधिक हो जाता है। मानव समाज को क्रम वद्धता और इतिहास के प्रवाह में व्यक्ति प्रकृति और समाज के अपने सम्बन्धों से पूर्ण रूप से सचेत होकर सद् के प्रभाव से ही जीवन यापन करता है। अध्यात्मिक दर्शनों के आधार पर सब व्यक्ति प्रकृति और अपने सम्बन्धों को उनके वास्तविक रूपमें समझ लेता है तो उसके संकुचित स्वार्थ, संस्कार, वृत्तियां

में ही होना चाहिए अथवा वैधानिक मार्ग के द्वारा ही इस पद्धति को समाप्त करने के लिये एक राजनीतिक दल की आवश्यकता पड़ेगी। हमारा निश्चित मत है कि सर्वोदयसमाज निर्माण के लिये उक्त दोनों ही बातों की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम जिस युग में रह रहे हैं वह पूर्व इतिहास से काफी आगे बढ़ चुका है अतः पूर्व इतिहास के अनुमानों के आधार पर आगामी प्रगति का सही अनुमान नहीं लगा सकते।

इस बात का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि आज पूँजीवाद हो या समाजवाद हो, उदारवाद हो अथवा राष्ट्रीयता ही हमारी समस्याओं का हल पेश नहीं कर रही है। एक ओर समाज में मानव की दास तुल्य स्थिति है उसे किसी प्रकार का अधिकार नहीं है और दूसरी ओर एक अथवा दूसरी व्यवस्था की ओर से मानव को स्वतन्त्रता के नाम पर मानव के व्यक्तित्व का वर्ग, श्रेणी, जाति, धर्म अथवा राष्ट्र में विलोप किया जा रहा है। इसके साथ ही वह गहरे अंधेरे में आशा की एक झलक हमें दिखलाई देती है कि मानव समाज को अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर मौलिक मानव अधिकारों से अधिकृत करने की चेष्टा की जा रही है।

"सर्वोदय" सिद्धान्त का मूल "मानव" और उसके हितों का समुचित करके समष्टि रूप में मानव समाज है। इस आधार को-स्वीकार करने के बाद मानव और फिर समाज का श्रेष्ठ

लगी है। इसके साथ ही केवल निषेधात्मक तथा घृणा के आधार पर संगठित होने के कारण रूसी समाजवाद वर्ग विहीन मानव समाज निर्माण में सफल न होकर मानव के यन्त्रीकरण और अपमान जनक अधिनायकवाद में पतित हो गया है। हमारी मानव प्रगति इन स्थलों पर पहुँच कर ही संतोष नहीं कर सकती है उसे पूर्णत्व की ओर विकसित होना है और वह क्रम और अग्रसर हो रहा है।

विभिन्न समस्याओं के साथ ही हमारी प्रमुख समस्या नैतिकता की है। नैतिकता के आधार पर ही मानव अपने निजत्व में पुन. विश्वास स्थापित कर सकता है। नैतिकता कोई अव्यक्त रहस्य-वादी वस्तु नहीं है। प्रकृति जिससे मानव का विकास हुआ है उसके कुछ नियम हैं। प्राकृतिक नियम और उसके विकास के आधार पर ही मानव में बुद्धि और विवेक उत्पन्न होता है। विवेक के सामाजिक स्वरूप को ही नैतिकता कहा जाता है। अतः मानव इस मौलिक सत्य को स्वीकार करके नैतिकता को अधिक सुदृढ़ता से अपना सकता है। इसके लिये उसे कल्पित विश्वासों, रहस्यवादी शक्तियों अथवा राज्य दंड के भय की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस नैतिक बल को लेकर मानवता के विकास और उसकी विजय के लिये मनुष्य समस्त विघ्न बाधाओं और सब आपदाओं का सामना करने के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये तत्पर हो जायेगा। यदि मानव में नैतिक बल और दृढ़ता उत्पन्न हो जाय तो फिर वह अपने लक्ष्य को शीघ्र ही प्राप्त कर सकता है।

कारण है कि आज किसी भी दल की राजनीति क्यों न हो उसका आधार असत्य हो गया है। सामाजिक समस्याओं की विवेचना और उनका हल निकालने के स्थान पर येन केन प्रकारेण राजसत्ता पर अधिकार करके उसे स्थापित रखने के प्रयत्न में दिन रात झूठी योजनाओं और मिथ्या घोषणाओं के आवरण में एक व्यक्ति अथवा वर्गों के स्वार्थों के ऊपर जनहित का बलिदान कर दिया जाता है। इस प्रकार कुनीति, अनाचार, और अत्याचार में राजसत्ता शोषण और दोहन का षड्यन्त्र बन जाती है। राजनीतिक दल जब इस प्रकार राजसत्ता पर अधिकार करने की इच्छा करते हैं अथवा अधिकार कर चुकते हैं तो उन्हें अपने बहुमत को बनाये रखने के लिये वह अपने दल के लोगों के भ्रष्टाचार और शासन को रोकने के स्थान पर संरक्षण देने लगते हैं। ऐसी स्थिति में मानव की समष्टि के हितों की हत्या हो जाती है और यों, राजनीतिक दल और राज्य सत्ता व्यक्ति को मुक्त करके उसके विकास में योग देने के स्थान पर उसको अपने हित विशेष की पूर्ति के लिये निरन्तर दास बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं।

संकेत था कि जातीय भेद भाव समाप्त हो जाने चाहिये क्यों कि वह मानवता का बाधक है और अतीत के इतिहास की शोषण पूर्ण स्थिति का कतिपय अवशेष है। धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने सभी धर्मों को समान आदर पूर्ण स्थान दिया। विभिन्न धर्मों के आपने उन तत्वों को अपनाया जिनमें मानव तत्व की प्रधानता है। मानवता की एकता के लिये इतिहास के और विभिन्न देशों के सांस्कृतिक उत्तराधिकार को सम्पूर्ण समाज में समान रूप से वितरित करने के लिये यह आवश्यक है कि उनको समान आदर दिया जाय और सभी देशों और व्यक्तियों में यह भावना उत्पन्न की जाय कि मानव समान है उसके उत्तराधिकार और उच्चादर्शों में भी समानता है। महात्मा गांधी ने भारत के स्वातंत्र्य युद्ध का नेतृत्व करने में भी राष्ट्रीय श्रेष्ठता और महत्वकांक्षा को उसकी उदार सीमाओं के बाहर ही जाने दिया। इसके साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्होंने राष्ट्रीय महत्वकांक्षा के उबाल को यथाशक्ति रोकने का प्रयत्न किया। यह कहना अनुचित न होगा कि महात्मा गांधी ने अपने जीवन का बलिदान जाति, धर्म और राष्ट्र की अहम्मन्यता को रोकने के लिए ही दिया है।

महात्मा गांधी की हत्या के कुछ समय पूर्व उन्होंने नवीन "सर्वोदय समाज" और लोक सेवा संघ के सम्बन्ध में अपने पूर्ण विचारों को प्रकाशित किया था। कांग्रेस की गतिविधि और उसकी प्रगति से महात्मा गांधी असन्तुष्ट थे। बाद में

स्वतन्त्र मानवता का विकास कर सके। इस भावी मानव समाज को जिसमें वर्ग, जाति धर्म और राष्ट्रीयता नहीं रहेगी जिसमें उत्पादन और वितरण मानव समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर विकेन्द्रित रूप में सङ्गठित किया जायेगा और जिसमें राज्य शक्ति केन्द्रित न होकर ग्राम ग्राम में विकेन्द्रित होगी जिसमें मानव अपनी सम्पूर्ण सफलताओं के योग से मानवता को अधिक विकासवान बना कर ऐसे समाज की रचना करेगा जिसमें मनुष्य का पूर्ण विकास होगा। समाज में पूर्णत्व का उदय होगा। समाज के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों का, उनकी पूर्ण क्षमताओं का, उनके गुण का विकास होगा। मानव का मन नव प्रकाश लेकर मानव जीवन में एक अभूत पूर्व आनन्द को प्रसारित करेगा जिसे हम सत्य का दिग्दर्शन कह सकेंगे। मानव के आध्यात्मिक स्वर्ग को इस मर्त्यलोक में भी वास्तविक साकार स्वरूप प्रदान कर सकेंगे।

स्वतन्त्र भारत चिरजीवी हो,

जयहिन्द !

राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, अमीनाबाद, लखनऊ

प्रिय महोदय,

सेवा में निवेदन है कि श्री गोविंदसहाय जी लिखित "कांग्रेस ही क्यों" नामक पुस्तक आज जनता का सच्चा पथ प्रदर्शन कर सकती है और निम्नलिखित पुस्तकें जो आपके प्रचार कार्य के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी शीघ्रातिशीघ्र आर्डर भेज कर मगावें।

नाम पुस्तक	लेखक	प्रति पुस्तक	सौ से अधिक
१—"कांग्रेस ही क्यों"	श्री गोविंदसहाय	।।≈) नेट	।।)
२—"गांधी गीता"	,,	।≈) नेट	।)
३—"आर० एस० एस० क्यों"	श्री वीरेन्द्र पाण्डेय दूसरा संस्करण	।≈) नेट	।)
४—"सर्वोदय समाज तथा विश्व"	श्री चन्द्रोदय दीक्षित	१) नेट	।।।)

छप रही है

१—गांधी चबूतरा
२। राष्ट्रीय चारित्र्य

} सितम्बर के दूसरे सप्ताह में छपकर तैयार होंगी।

दिनांक १४।८।४६

भवदीय
उमाशंकर दीक्षित
व्यवस्थापक

स्वतः मार्क्स ने मानव की इस प्रगति को स्वीकार करके हेगेलके द्वन्द्व न्याय के सिद्धान्त के चक्कर में आकर वर्गऔर श्रेणी के पाट में अपने को बांध कर मानव विकास की धारा के साथ बहने के स्थान पर डूब जाने को ही स्वीकार कर लिया है। हमें इस नवीन दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन करना चाहिये।

स्वतः मार्क्स ने मानव की इस प्रगति को स्वीकार करके हेगेल के द्वन्द न्याय के सिद्धान्त के चक्कर में आकर वर्ग और श्रेणी के पाट से अपने को बांध कर मानव विकास की धारा के साथ बहने के स्थान पर डूब जाने को ही स्वीकार कर लिया है। हमें इस नवीन दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन करना चाहिये।

अतः मार्क्स ने मानव की इस प्रगति को स्वीकार करके हेगेलके द्वन्द्व न्याय के सिद्धान्त के चक्कर में आकर वर्ग और श्रेणी के पाट से अपने को बांध कर मानव विकास की धारा के साथ बहने के स्थान पर डूब जाने को ही स्वीकार कर लिया है। हमें इस नवीन दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन करना चाहिये।

स्वतः मार्क्स ने मानव की इस प्रगति को स्वीकार करके हेगेलके द्वन्द न्याय के सिद्धान्त के चक्कर में आकर वर्गऔर श्रेणी के पाट मे अपने को बांध कर मानव विकास की धारा के साथ बहने के स्थान पर डूब जाने को ही स्वीकार कर लिया है। हमें इस नवीन दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन करना चाहिये।